टिकाऊ विकास को समझने की कोशिश

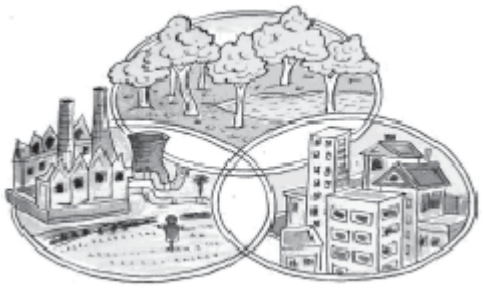

शरद लेले

शरदचंद्र (शरद) लेले अशोका ट्रस्ट फॉर रिसर्च इन इकॉलॉजी एण्ड दी एनवायर्मेंट (ATREE) के सेंटर ऑर एनवायर्मेंट एण्ड डेवलपमेंट में शोधकर्ता हैं। वे पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ विकास, और खास तौर से वनों और जल प्रबंधन के क्षेत्र में अवधारणात्मक व आनुभविक मुद्दों पर काम करते हैं। उनके प्रस्तुतीकरण का सम्बंध पर्यावरणीय मुद्दों के विभिन्न पहलुओं, खास तौर से इन मुद्दों में सामाजिक न्याय के आयाम को समझने से रहा, जो भारत में पर्यावरण आंदोलन की प्रमुख चालक शक्ति रही है।*

शरद

मेरी पर्यावरणीय यात्रा संभवतः स्कूल के दिनों में शुरू हुई थी जब मेरा परिचय सह्याद्री पर्वतों में ट्रेकिंग से हुआ था। उस समय मैं पुणे के एक स्कूल में था, जहां एक बहुत ही उत्साही शिक्षक थे जो हमें सह्याद्री में हाइकिंग और ट्रेकिंग पर ले जाया करते थे ताकि हमें शिवाजी के किले वगैरह जैसे ऐतिहासिक स्थलों से परिचित करा सकें। हो सकता है कि अपनी बात के अंत में मैं (वन्यजीव) संरक्षण समुदाय का आलोचक नज़र आऊं इसलिए सबसे पहले में उस समुदाय के प्रति अपना सम्मान व्यक्त कर दूं क्योंकि वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड के माध्यम से ही मेरा प्रथम परिचय पक्षी दर्शन से हुआ था, और मैंने उस पक्षी दर्शन शिविर के बाद पुणे शहर के पक्षियों को अलग ही चश्मे से देखना शुरू कर दिया था। मगर यह रुचि शौक के स्तर पर ही रही। इसके बाद मैंने आई.आई.टी. मुंबई में बी.टेक. जॉइन कर लिया और महसूस किया कि बी.टेक. के बाद का रास्ता, जिसे मेरी कक्षा के सारे लोगों ने और हममें से अधिकांश ने अपनाया था, यह था कि भारत के कार्पोरेट क्षेत्र में प्रवेश करो और अक्सर काफी ढर्रानुमा काम करो या विदेश चले जाओ। यह मुझे रास नहीं आया और मैं ज़्यादा दिलचस्प चीज़ों या यों कहें कि सामाजिक रूप से ज़्यादा प्रासंगिक चीज़ों की तलाश में था। मेरे ख्याल में पर्यावरण में मेरी दिलचस्पी पैदा होने का एक कारण यह था कि 1982 में, जब मैं बी.टेक. में ही था, अनिल अग्रवाल, रवि चोपड़ा और कल्पना शर्मा द्वारा संपादित प्रथम *सिटिज़न्स रिपोर्ट ऑन दी स्टेट ऑफ इण्डियाज़ एनवायर्मेंट* प्रकाशित हुई थी। उस रिपोर्ट को पढ़कर मेरा तो जीवन ही बदल गया।

हममें से कुछ लोग वन्य जीवन और पर्वतारोहण में रुचि रखते थे और हमने इस रिपोर्ट की एक प्रति हासिल कर ली और इसने मुझे सबसे पहले यह बात समझाई कि पर्यावरण सिर्फ वन्य जीवन और पक्षी नहीं हैं, सिर्फ एक शौक नहीं है जिसे आप फुरसत के समय में पूरा करते हैं और बाकी समय अपना सामान्य आर्थिक जीवन व्यतीत करते हैं। पर्यावरण तो हमारे आसपास की हर चीज़ है, हमारे जीवन के हर पहलू से जुड़ा है, चाहे वह पानी हो, जंगल हो, ऊर्जा हो, प्राकृतवास हो, व्यावसायिक बीमारियां हों या कुछ और। मेरा ख्याल है कि 1982 की इस रिपोर्ट ने पर्यावरणवाद की दुनिया में एक नया धरातल प्रस्तुत किया था। इसने मुझे बहुत प्रभावित किया और मुझे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स में पनबिजली और उसके प्रभावों के सवाल पर मास्टर डिग्री और फिर बर्कले से पीएच.डी करने को प्रेरित किया। इस तरह से मैं इंजीनियरिंग से इंजीनियरिंग अर्थशास्त्र की ओर बढ़ा, और फिर वन इकॉलॉजी में गया और साथ ही साथ सामाजिक विज्ञान, खास तौर से अर्थशास्त्र की ओर बढ़ा और हाल ही में राजनैतिक विज्ञान की ओर।

---

* डॉ. लेले द्वारा ब्लैकबोर्ड पर बनाए गए रेखाचित्रों के लिए इस प्रस्तुतीकरण के अंत में देखें।

पर्यावरणवादी कौन हैं और पर्यावरणवाद क्या है?

इस दौरान मेरा ध्यान लगातार इस बात पर रहा है कि पर्यावरणवाद के विचार को समझने की कोशिश करूं। जब हम पर्यावरणवाद कहते हैं तो हमारा आशय क्या होता है? यह प्रश्न बार-बार मेरे सामने आता है। मुझे याद है, करीब दस साल पहले डेकन हेरॉल्ड में नर्मदा आंदोलन के बारे में एक लेख छपा था जिसमें कहा गया था कि इन सारे पर्यावरणवादियों को विदेशी पैसा मिलता है और ये विकास और गरीबों के उत्थान के रास्ते में अड़चन बन रहे हैं। मैं सोचने लगा कि यह रोचक बात है कि नर्मदा बचाओ आंदोलन, जो नर्मदा घाटी में उन लोगों के जीवन के लिए लड़ रहा है जिनकी ज़िन्दगियां एक बांध में डूब जाएंगी, उसे पर्यावरणवादी कहा जा रहा है। आखिरकार, आंदोलन नर्मदा घाटी के जंगलों या किसी खतराग्रस्त सुंदर बाघ के बारे में नहीं है। आंदोलन तो लोगों के जीवन, खेती-बाड़ी वगैरह के बारे में बात कर रहा है। यह रोचक बात है कि इन कार्यकर्ताओं को पर्यावरणवादी की संज्ञा दी जा रही है, और इस शब्द को एक अपमानजनक शब्द के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। एक मायने में इसका उपयोग उन्हें दबाने के लिए किया जा रहा है। और ऐसा होता रहता है कि लोग पर्यावरणवादी और पर्यावरण शब्दों का उपयोग बहुत अलग-अलग ढंग से करते हैं। मेरे इस सत्र का फोकस यही रहेगा।

सौमित्री का काम कठिन था कि आपको यह बताए कि कैसे पर्यावरण बहु-आयामी और पेचीदा ढंग से संकट में है। मगर मैं तो इस संकट को मानकर चलूंगा, हालांकि यह मामला भी समस्यामूलक हो सकता है। भूजल में कमी आ रही है, पंजाब-हरियाणा के इलाकों में मिट्टी खारी हो रही है, अन्यत्र मिट्टी का अपरदन हो रहा है और इसके चलते कृषि उत्पादकता घट रही है, खेती में कुछ किस्म के नाशी-कीटों में वृद्धि हुई है, शहरों में पानी का अभाव है, सूखों में वृद्धि हो रही है, वगैरह। कुल मिलाकर हम जिसे पर्यावरण का संकट कहते हैं, उसके कुछ मोटे-मोटे मापदंड निर्धारित कर सकते हैं। मगर मुझे लगता है कि यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि इसे दोनों तरफ से कैसे एक व्यापक संदर्भ में रखा जाए, क्योंकि जो कुछ हो रहा है, उसके विवरण में भी एक आदर्शमूलक घटक है और दूसरा विश्लेषणात्मक घटक है। आदर्शमूलक से मेरा आशय है कि किस चीज़ को हम मानते हैं कि ऐसा होना चाहिए - जैसे लोगों को गरीब नहीं होना चाहिए, लोगों को पानी से वंचित नहीं होना चाहिए, या लोगों को भूख से या प्रदूषित हवा में सांस लेकर नहीं मरना चाहिए वगैरह। तो हमारे पास तमाम किस्म के 'होना चाहिए' हैं जिनके आधार पर संकट का मापन किया जाता है।

इसके मद्दे नज़र मैं जिन दो कड़ियों पर ध्यान केंद्रित करूंगा, वे हैं, एक ओर तो समस्या को परिभाषित करना - यह एक समस्या क्यों हैं? मैं क्यों इसकी चिंता करूं? मान लीजिए तापमान 20 डिग्री सेल्सियस बढ़ने वाला है, या भूजल 1000 फुट नीचे जाने वाला है। क्या इससे कोई फर्क पड़ता है? और जिस ढंग से इससे फर्क पड़ता है, वह पर्यावरणवाद का पूरा आदर्शमूलक घटक है, दरअसल किसी भी सामाजिक समस्या का आदर्शमूलक घटक है (मैं पर्यावरणीय समस्याओं को सामाजिक समस्याओं का एक उपसमूह मानता हूं)। किसी भी सामाजिक समस्या से निपटने से पहले आपको यह रेखांकित करना होता है कि उससे क्या फर्क पड़ता है। अन्यथा वह समस्या महज एक परिघटना है, जैसे जलवायु का गर्माना या ठंडा होना, बाढ़ों में वृद्धि या कमी; ये सब विवरणात्मक शब्द हैं जिनका कोई नकारात्मक आशय नहीं है। तो हमें न सिर्फ यह खुलासा करना होता है कि 'ऐसा क्यों होता है?' बल्कि यह भी स्पष्ट करना होता है 'इससे फर्क क्यों पड़ता है?' पहला सवाल विज्ञान के दायरे में है। यानी एक मायने में एक वैज्ञानिक 'क्यों' है, जैसे डीडीटी क्यों बाल्ड ईगल को मार देता है? मगर एक सामाजिक-राजनैतिक 'क्यों' भी है - डीडीटी का उपयोग ही क्यों किया जाता है? इसके दुष्प्रभाव पता होने के बावजूद इसका उपयोग क्यों होता है। और इसका स्थान ऐसी कोई चीज़ क्यों ले लेती है जो और भी ज़्यादा हानिप्रद है? वगैरह-वगैरह। इस तरह से देखें तो वैज्ञानिक 'क्यों' और सामाजिक 'क्यों' के बीच बहुत दिलचस्प कड़ी है। और आप जिस ढंग से समस्या को परिभाषित करते हैं और फिर उसका समाधान ढूंढते हैं, उनके बीच एक अंतरंग सह-सम्बंध भी है, जो प्रायः अचेतन रहता है।

पर्यावरणीय सरोकार की समझ, किसी मुद्दे को सामाजिक मूल्य देनाः एक उदाहरण

शुरू करते हैं एक नज़दीकी समस्या से। किसी ने कहा था कि जलवायु परिवर्तन बहुत दूर की बात है, कि वर्ष 2010 में आर्क्टिक में कुछ होगा, ध्रुवीय भालू गायब हो जाएंगे वगैरह...और मैंने ध्रुवीय भालू देखा तक नहीं है, तो मेरा इससे क्या लेना-देना। नियमगिरी विवाद का उदाहरण लेते हैं। नियमगिरी उड़ीसा में एक पहाड़ है और इस पहाड़ के आसपास कोंध आदिवासी समुदाय बसा है। नियमगिरी पहाड़ से कोंध लोगों का बहुत गहरा सांस्कृतिक व धार्मिक जुड़ाव है। यह पहाड़ घने जंगलों से ढंका है और यहां काफी मात्रा में जैव विविधता मौजूद है, जिसमें कुछ ऐसी दुर्लभ प्रजातियां हैं जो देश में कहीं और नहीं पाई जातीं। मगर इस पहाड़ी को एक बहुराष्ट्रीय कंपनी बॉक्साइट खनन के लिए मांग रही है। इस मुद्दे को एक पर्यावरणीय संकट/समस्या के रूप में, या पहाड़ी में बॉक्साइट खनन रोकने के एक पर्यावरण आंदोलन के रूप में परिभाषित किया जा रहा है। मेरे मन में सवाल यह आता है कि यह क्यों एक समस्या है? यदि कंपनी नियमगिरी में से बॉक्साइट खनन करना चाहती है, तो इसमें समस्या क्या है? आप ज़रूर यह बताना चाहेंगे कि इसमें समस्या क्या हो सकती है।

जवाब (श्रोता)

यह आदिवासियों की कई चीज़ों को विस्थापित कर देगी।

जवाब (श्रोता)

प्राकृतवास का विनाश हो सकता है।

शरद

किसका प्राकृतवास?

जवाब (श्रोता)

लोगों का।

शरद

और कुछ?

जवाब (श्रोता)

वनस्पति समेत कई दुर्लभ प्रजातियों का खात्मा।

जवाब (श्रोता)

आदिवासियों की धार्मिक आस्थाएं प्रभावित होंगी।

शरद

क्या मैं इसे सांस्कृतिक नुकसान कह सकता हूं? यानी आदिवासियों के विस्थापन के विपरीत, जो कि एक भौतिक नुकसान है? और इस बारे में क्या कहेंगे कि बॉक्साइट खनन से देश में एल्यूमिनियम की उपलब्धता बढ़ेगी और इस बात की संभावना बढ़ेगी कि हमें एल्यूमिनियम से बनी चीज़े मिलेंगी?

टिप्पणी (श्रोता)

बॉक्साइट का मालिक कौन है? आदिवासी या आप? हमें यह सवाल पूछना होगा।

शरद

तो लाभ किसे मिलता है? कौन उसका मालिक है? और कोई चिंता? यह एक समस्या क्यों है?

देविका नडिग, शिक्षांगन

मेरे ख्याल में एक चीज़ जिसके बारे में वे लड़ रहे हैं, वह यह है कि खनन कंपनी लंबे कंवेयर बेल्ट्स का उपयोग करने वाली है जिसकी वजह से आदिवासियों को अपने गांवों तक पहुंचने के लिए काफी चलना पड़ेगा। यह बात इस तथ्य के अलावा है कि वे अपनी पहाड़ियों को देवता मानकर उनकी पूजा करते हैं।

शरद

हम क्या कहें - यह एक सांस्कृतिक समस्या है या भौतिक समस्या है। क्या यह मिल्कियत का सवाल है? दिलचस्प बात यह है कि यह जलाऊ लकड़ी के संकट या घटते प्राकृतिक संसाधनों के संकट या 1970 के पहले तेल के संकट वगैरह से अलग ढंग की पर्यावरणीय समस्या है। जैसे आज हम बातें कर रहे हैं कि अगले 50 या 100 सालों में अधिकांश सस्ते तेल के भंडार चुक जाएंगे और लागतें बढ़कर एक हद से पार हो जाएंगी। सत्तर के दशक में काफी सारा पर्यवरणीय साहित्य उभरा था जो 'विकास की सीमाओं' के इर्द-गिर्द था। इस सीमा का सम्बंध संसाधनों के अभाव से था। इस स्थिति में तो बॉक्साइट का खनन वास्तव में दुनिया में एल्यूमिनियम की उपलब्धता में इजाफा करेगा। और वास्तव में खनन-विरोधी पर्यावरण समूह, एक मायने, में दुनिया को एल्यूमिनियम की सप्लाई से वंचित करके संसाधनों के अभाव को बढ़ाने का काम करेंगे तो यह एक बहुत अलग किस्म की पर्यावरण समस्या है। नियमगिरी में एक फर्क यह है कि जहां सामाजिक कार्यकर्ता आदिवासी समुदायों के बारे में बात कर रहे हैं, जीविका और संस्कृति के सवालों को देख रहे हैं, वहीं संरक्षणवादी भी हैं जो दुर्लभ प्रजातियों की बात कर रहे हैं।

रोहित

क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि इसे आपने पर्यावरण समस्या के रूप में क्यों वर्गीकृत किया है? मामला तो इस बात का है कि आप किसी को उसके अपने घर से खदेड़ दें और उसकी जीवन शैली को जबरन बदल डालें। तो आप इसे आदिवासी समुदाय के साथ अन्याय की बजाय एक पर्यावरणीय समस्या के रूप में क्यों परिभाषित कर रहे हैं?

शरद

एकदम सही कहा आपने। तो आप कह सकते हैं कि यह वास्तव में पर्यावरण की समस्या है ही नहीं, सिवाय इसके कि चूंकि जीविकाएं भौतिक संसाधनों पर निर्भर करती हैं, सिर्फ इस अर्थ में यह एक पर्यावरण समस्या है। भौतिक संसाधनों के लिए संघर्ष पर्यावरण के लिए संघर्ष ही है।

तो भारतीय पर्यावरण आंदोलन का एक योगदान यह रहा है कि उसने पर्यावरण के विचार को विस्तार दिया है, महज दुर्लभ प्रजातियों के गायब होने की बात करने की बजाय यह कहा कि यदि आप लोगों को उन संसाधनों से वंचित करते हैं जो उनके जीवनयापन के लिए ज़रूरी हैं, तो वह भी पर्यावरण की समस्या है क्योंकि इससे वास्तव में लोगों की जीविकाएं तबाह हो जाती हैं।

रोहित

नहीं, नहीं। मैं जो कहने की कोशिश कर रहा था, मान लीजिए मैं आपकी ज़मीन पर कब्ज़े के लिए लड़ता हूं, जो मेरे कब्ज़े में भी उतना ही गेहूं पैदा करेगी, तो यह भी एक समस्या है मगर ज़रूरी नहीं कि यह पर्यावरण की समस्या हो। यह न्याय की, सामाजिक न्याय की समस्या है।

शरद

बिलकुल ठीक। सामान्यतः मेरी गेहूं की ज़मीन लेकर आप उस पर गेहूं उगाएं, तो उसे पर्यावरण समस्या नहीं कहेंगे क्योंकि इसमें कोई फेरबदल नहीं हो रहा है। मगर, मान लीजिए बात जंगल की है, यदि वन विभाग तय करता

है कि पेड़ काटकर वहां सागौन लगाएगा, और लोग विरोध करते हैं और सागौन के प्लांटेशन को जला देते हैं, तो इसे इस अर्थ में एक पर्यावरण समस्या माना जाएगा कि आपके और जंगल विभाग के बीच एक जैव-भौतिक प्रक्रिया मौजूद है जो इस सम्बंध में मध्यस्थ है। वास्तव में इसीलिए पर्यावरणीय मुद्दे को परिभाषित करना एक समस्या होती है।

शुभ्रा चटर्जी, विक्रमशिला

तो यदि खेती की ज़मीन को उद्योग के लिए लिया जा रहा है, तो क्या आप इसे पर्यावरण की समस्या मानेंगे?

शरद

कई मायनों में ये शब्द हमारे उपयोग और पुनःउपयोग के लिए हैं। उदाहरण के लिए, एक दलील दी गई है कि नर्मदा बचाओ आंदोलन ने अपने ऊपर पर्यावरण का लेबल चस्पा होने दिया क्योंकि इसके चलते उन्हें कतिपय अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संगठनों का समर्थन मिला। तो आप कह सकती हैं कि खेती ज़मीन को उद्योग बनाने के लिए लेना इस अर्थ में एक पर्यावरणीय समस्या है कि आप समाज को उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का स्वरूप बदल रहे हैं। आप खेती की ज़मीन या उपजाऊ ज़मीन को किसी और चीज़ में तबदील कर रहे हैं। यह भी कहा जा सकता है कि आप एक ढंग से प्राकृतिक निधि को भी बदल रहे हैं।

शुभ्रा

दूसरे शब्दों में, सीमाएं धुंधली पड़ रही हैं।

शरद

जी हां

शुभ्रा

आप कहना क्या चाहते हैं? हमने पर्यावरण के मुद्दे को किस तरह से देखना सीखा है? यह हमारे जीवन से कितनी नज़दीकी से जुड़ा है?

शरद

मैं यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि यह हमारे जीवन से अलग-अलग ढंग से जुड़ा है और अलग-अलग हितधारियों (stakeholders) के संदर्भ में भी अलग-अलग है।

शशिधर जे, सीएफएल

मसलन यदि कुछ स्थानीय लोग खनन कर रहे हों, और एक बहुराष्ट्रीय कंपनी आकर खनन करना चाहती है, जिससे उत्पदकता बढ़ेगी, तो यह बिलकुल अलग बात होगी।

शरद

सही है। सवाल सिर्फ इस बात का नहीं है कि किसे फायदा होता है; सवाल इस बात का भी है कि 'हम भी खनन ही करेंगे'; सवाल मेरे द्वारा खनन और आपके द्वारा खनन का है, और यह एक जाना-माना सामाजिक टकराव होगा। यदि सवाल यह है कि उस पहाड़ी पर क्या करना चाहिए, और जब मैं खनन करता हूं तो कुछ प्राकृतिक धरोहर को भी तबाह करता हूं, जो वैसे हमारी साझा धरोहर है वगैरह, तो यह सामाजिक-पर्यावरणीय समस्या के दायरे में आता है। यह स्वामित्व का मुद्दा है, और इस बात का भी मुद्दा है कि आप पर्यावरणीय तंत्र के साथ क्या करते हैं।

इससे जो बात उभरती है वह है कि इसमें कई हितधारी हैं जो अलग-अलग चीज़ों की बात कर रहे हैं। तो संरक्षण

का सम्बंध कुछ दुर्लभ प्रजातियों से है, और आदिवासी जीवन व संस्कृति पर ध्यान केंद्रित करने से है। एक और रोचक बात यह शब्द 'टिकाऊपन' (sustainability) है। आप सवाल पूछ सकते हैं कि 'क्या यह टिकाऊपन की समस्या है?' यह देखना बहुत मुश्किल है कि यहां टिकाऊपन की समस्या क्या है। आप बॉक्साइट का खनन अगले 20 वर्षों तक तो जारी नहीं रख सकते; यह तो उस भंडार की साइज़ पर निर्भर है। एक निर्धारित मात्रा है जिसे आप निकालेंगे, और किस्सा खत्म।

देवीश्री राहा, विप्रो फेलोशिप

बीच में टोकने के लिए माफ करें, मगर आप किसके टिकाऊपन की बात कर रहे हैं?

शरद

तो हम इस मुद्दे पर आ जाते हैं। क्या यह टिकाऊपन का मुद्दा है या क्या मुद्दा इस बात का है कि संसाधन हैं किसके? और किसी की भी जीविका की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संसाधनों में परिवर्तन के नियम क्या हैं? और अन्य हितधारी कौन हैं? क्या आप जायज़ तौर पर यह कह सकते हैं कि बैंगलोर में रहने वाले मेरे जैसे व्यक्ति को यह दुहाई देकर नियमगिरी पर झंडा गाड़ने का हक है कि नियमगिरी में पाई जाने वाली किसी दुर्लभ वनस्पति या किसी दुर्लभ जंतु की रक्षा की जानी चाहिए या उसके प्राकृतवास को खदान में तबदील नहीं करना चाहिए? क्या मैं नियमगिरी में एक वैध हितधारी हूं या नहीं? नियमगिरी में जंगल हैं। तो यूएस की कोई बिजली कंपनी कह सकती है कि नियमगिरी के जंगल कार्बन स्थिरीकरण करते हैं, इसलिए ये जंगल नहीं काटे जाने चाहिए क्योंकि इससे जलवायु परिवर्तन की रोकथाम में मदद मिल रही है। इसका मतलब होगा कि समूचा वैश्विक समुदाय नियमगिरी में हितधारी है।

टिकाऊपन की अवधारणा

विचार यह है कि कई सारे हितधारी हैं और प्रकृति के साथ उनके अलग-अलग सम्बंध हैं। मुद्दा यह है कि यदि आप सिर्फ पर्यावरणीय टिकाऊपन की बात करते हैं, तो काफी भ्रामक हो जाता है। फिर भी टिकाऊपन एक सुविधाजनक शब्द है और एक स्तर पर टिकाऊपन का अर्थ होता है 'कुछ अच्छा'। एक आकर्षक जुम्ले के रूप में तो यह बढ़िया है मगर विश्लेषण की एक श्रेणी के रूप में बेकार है। टिकाऊपन क्या है? कोई भी चीज़ जो अच्छी है, वह टिकाऊ है। कोई भी चीज़ जो टिकाऊ हो, वह अच्छी है। यह और कुछ नहीं लफ्फाज़ी बनकर रह जाती है। यदि आप टिकाऊपन शब्द की उत्पत्ति को देखें तो किसी चीज़ का टिकाऊ होना मतलब समय के साथ उसका जारी रहना होता है। तो जब आप कहते हैं कि खनन एक टिकाऊ गतिविधि है, तो इसका अर्थ यह है कि आप यह काम काफी समय तक कर सकते हैं। मगर इस सवाल का जवाब देना ज़्यादा कठिन होगा कि 'क्या नियमगिरी को एक खदान में बदलना एक टिकाऊ काम होगा?' यह न सिर्फ कठिन बल्कि कुछ अर्थों में एक अनुपयोगी सवाल भी है क्योंकि टिकाऊ शब्द आपको सिर्फ यह बताता है कि वह क्या चीज़ है जिसे आप लंबे समय तक जारी रखना चाहते हैं। तो तेल को लेकर सत्तर के दशक की बहसों में, और आज की बहसों में भी आप यह सवाल पूछ सकते थे कि यदि हम तेल पर बहुत अधिक निर्भर अर्थ व्यवस्था या समाज को जारी रखें, तो क्या यह टिक सकेगा? और आप जवाब दे सकते थे कि 'हां, यदि हमने जल्दी ही ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों को न अपनाया, तो शायद हम अगले 50 वर्षों तक चला पाएंगे, और फिर ठप हो जाएंगे।' यानी संभवतः हमें इस सवाल का जवाब मिल सकता है कि - यदि हम तेल पर निर्भर रहे, तो क्या हम 50 वर्षों के बाद टिक पाएंगे? इसी प्रकार से हम टिकाऊ वानिकी के बारे में बात कर सकते हैं कि यदि आप इस रफ्तार से जंगल काटते रहे तो क्या आप भविष्य में भी जंगल काटते रह पाएंगे? संभवतः इसका जवाब यह होगा कि आज उन्हें इस रफ्तार से काटिए कि भविष्य में काटते रह सकें।

अनवर

क्या इस तरह के खनन कार्य में काफी पैसा पैदा नहीं होता जिसे आदिवासियों के जीवन को ज़्यादा शहरी जीवन

में बदलने के लिए उपयोग किया जा सके। क्या वह टिकाऊपन नहीं होगा?

शरद

हो सकता है यह उनके लिए 'विकास' हो मगर यह सवाल समस्यामूलक है कि क्या इसका आशय टिकाऊपन होगा। उदाहरण के लिए, जब हम खेती की बात कर रहे हैं, गेहूं उगाने की बात कर रहे हैं, तो आप यह सवाल पूछ सकते हैं कि क्या इस मिट्टी में एक निश्चित दर पर उर्वरक डालने से यह इतनी अनुपजाऊ हो जाएगी कि भविष्य में गेहूं नहीं उगाया जा सकेगा? यह एक उपयुक्त सवाल है। यदि आप यह पूछें कि आज एक गेहूं का खेत है, उसे कल शहर बना दिया जाता है, क्या यह परिवर्तन टिकाऊ है? यह एक तरह के भूमि उपयोग को दूसरी तरह के भूमि उपयोग में बदलने की बात है, एक हितधारी की जगह दूसरे हितधारी की बात है, किसान दृश्य से बाहर हो रहा है और अब कोई उद्योग है जो उस ज़मीन का उपयोग कर रहा है, तो यहां टिकाऊपन से हमारा क्या मतलब है?

रोहित

यह समझ में आता है। यदि आप टिकाऊपन को आदिवासी समुदाय के स्तर पर ही परिभाषित कर रहे हैं, या आप उसे 10 किलोमीटर के दायरे में रहने वाले लोगों के आधार पर परिभाषित कर रहे हैं, तो समझ में यकीनन अंतर होगा। अधिकांश लोग जब पर्यावरण में या वैश्विक परिदृश्य में टिकाऊपन की बात करते हैं तो वे इन्सानों के फलने-फूलने के लिए समाज के टिकाऊपन की बात करते हैं। इस मायने में, हर छोटी चीज़, खेती की ज़मीन उद्योग को सौंपे जाने समेत, को टिकाऊपन के मुद्दे के रूप में देखा जा सकता है - यदि यह एक नीति बन जाती है, यदि यह चीज़ बड़े पैमाने पर होने लगे, तो इसका मानव जाति पर क्या प्रभाव होगा। तो जब टिकाऊपन के तहत मानव जाति या मानव संस्कृति का टिकाऊपन शामिल है, तब हर चीज़ के साथ टिकाऊपन का एक आयाम हो सकता है।

शरद

मैं आपसे सहमत हूं। अब चुनौती यह देखने की है कि क्या किसी सवाल को पर्यावरण के सवाल के रूप परिभाषित करने के और भी तरीके हैं, जो टिकाऊपन से इन्कार न करते हुए अन्य आयामों को रेखांकित करे।

सुदेशा, स्वनिर्भर

मैं गेहूं वाला उदाहरण लूंगी जिसमें एक आदिवासी समुदाय है जो गेहूं उगाता है, और वह उसे एक कंपनी को देता है और वह भी गेहूं ही उगाती है। जिस ढंग से इसे उगाया जाता है, उसमें अंतर है। आदिवासी लोग इस काम को अपने निर्वाह के लिए, अपनी जीविका के लिए करते हैं। जब कंपनी आ जाती है तो पूरा नज़ारा ही बदल जाता है।

शरद

जी हां, तो मेरा सवाल यह होगा कि क्या हम इस मुद्दे के साथ एक सामाजिक मूल्य जोड़ रहे हैं और फिर उसे एक पर्यावरणीय मूल्य दे रहे हैं? हो सकता है कि खेती तो एक जैसी हो मगर लाभ अलग-अलग लोगों को मिले। मैं यह कह रहा हूं कि सिद्धांततः तो यह मुमकिन है कि कंपनी वही तौर-तरीके अपनाए जो आदिवासी लोग करते थे क्योंकि इससे उल्टा भी संभव है जैसा कि हम देख रहे हैं कि आदिवासी बढ़ते क्रम में कंपनी के तौर-तरीके अपना रहे हैं। यह मासूम मान्यता काफी धुंधली साबित हो रही है कि जीवन निर्वाह स्तर के किसान ऐसे पारंपरिक सांस्कृतिक तौर-तरीके अपना रहे हैं जो पर्यावरण-प्रेमी हैं। आजकल किसान व्यापारिक खेती कर रहे हैं, भूजल उलीच रहे हैं, उर्वरक और कीटनाशक अंधाधुंध उंडेल रहे हैं।

कर्नाटक का एक अलग उदाहरण लेते हैं। 1982 की प्रथम पर्यावरण रिपोर्ट में इसे प्रस्तुत किया गया था। तुंगभद्रा

नदी के किनारे स्थित हरिहर पोलीफायबर्स कागज़ व लुगदी बनाने वाली कंपनी है। आपमें से कई लोग जानते ही हैं कि कागज़ व लुगदी उद्योग काफी प्रदूषकारी उद्योग है और यह कंपनी लंबे समय से काफी सारा प्रदूषण तुंगभद्रा में डालती थी। आपसे मेरा सवाल है कि क्या यह पर्यावरण की एक समस्या है? क्यों? मैंने आपको यह जानकारी तो दे ही दी है कि हरिहर पोलीफायबर्स तुंगभद्रा में प्रदूषक डाल रही है, शायद मुझे प्रदूषक शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि वह भी कुछ संकेत देता है। शायद मुझे कहना चाहिए कि वह अमुक मात्रा में रसायन नदी में डाल रही है। तो क्या यह एक समस्या है? क्यों?

जवाब (श्रोता)

यह नदी में जीवों को प्रभावित करता है, पेयजल और भूजल को प्रभावित करता है और कुछ हद तक फसलों को प्रभावित करता है जो इस पानी पर निर्भर हैं।

शरद

यदि ऐसा है, तो इसमें क्या गलत है यदि हरिहर पोलीफायबर्स प्रदूषण डालता है और डाउनस्ट्रीम में किसी की फसलें तबाह हो जाती हैं? समस्या क्या है? इस समस्या में आप नैतिक रुख को कैसे पहचानेंगे?

टिप्पणी (श्रोता)

अंततः असर किस पर पड़ता है?

शरद

किसी पर, शायद किसी अमीर किसान पर।

टिप्पणी (श्रोता)

गरीब किसान क्यों नहीं?

शरद

हो सकता है गरीब हो। मैं कह रहा हूं कि हमें पता नहीं कि क्या अमीर-गरीब किसी किसान पर असर पड़ता है। मेरा सवाल है कि यहां नैतिक रुख क्या है? आम तौर पर हम इस समस्या में क्या देखते हैं? क्या आप कहेंगे कि यह गैर-टिकाऊ है? या यह कहेंगे कि यह भयानक है क्योंकि यह जीवन को संकट में डाल रही है या मानव जाति की भावी खुशहाली को संकट में डाल रही है?

टिप्पणी (श्रोता)

यह भी है कि उद्योग गैर-ज़िम्मेदार व्यवहार कर रहा है। कोई और इसकी कीमत चुका रहा है।

शरद

तो यहां नैतिक मुद्दा क्या है? क्या भावी पीढ़ियां खतरे में हैं?

वेणु

पहली नैतिक समस्या तो यह है कि कोई एक संसाधन का अनाधिकार उपयोग कर रहा है, जो उसकी कीमत नहीं चुका रहा है। पारंपरिक अर्थशास्त्रीय तर्क यह है कि इसमें कुछ बाह्य लागत है जो कोई और भर रहा है। यह पहला तर्क है। दूसरा है कि हरिहर द्वारा नदी में कुछ डाला जाना मनमाने अधिकार का उपयोग है। यह ताकत का सवाल है।

शरद

ठीक है। जैसा कि मैं समझा हूं, आप यह कह रही हैं कि वे ऐसा करके बच पा रहे हैं क्योंकि उनके पास राजनैतिक

ताकत है।

वेणु

या राजनैतिक तंत्र इस तरह से ताकत के उपयोग से निपटने को लेकर पर्याप्त संवेदनशील नहीं है, जैसा कि नियमगिरी के मामले में भी दिखता है। मुख्य नैतिक समस्या यह लगती है कि ताकत का ऐसा उपयोग किया जा रहा है जो हमारी नैतिक समझ को चोट पहुंचाता है।

शरद

मैं उपसर्ग 'गैर-' को रखना चाहता हूं और एक तर्क विकसित करना चाहता हूं कि यह किसी स्तर पर मानव जाति के लिए 'गैर-टिकाऊ' है। क्या आप हरिहर पोलीफायबर्स के मामले में टिकाऊ के साथ 'गैर-' का उपयोग करना चाहेंगी?

वेणु

यह उस किसान के लिए तो गैर-टिकाऊ है जो डाउनस्ट्रीम है। देखिए, आप यह सवाल पूछ सकते हैं, यदि हरिहर पोलीफायबर्स को नदी में उन रसायनों को डालने के लिए टैक्स चुकाना पड़े, तो क्या यह उचित हो जाता है? हरिहर कह सकती है कि 'देखो हम अमुक मात्रा डालने के लिए टैक्स भर चुके हैं, इसे साफ करना किसी और का काम है, शायद सरकार का।' यह फिर भी उचित है। मगर यह हमारी नैतिक समझ पर चोट करता है कि हरिहर ऐसा कर सकता है। क्योंकि...

शरद

क्योंकि यह अनुचित है, क्योंकि यदि किसान को साफ पानी मिलता रहता, तो आपको कोई समस्या नहीं होगी। यह तो ठीक है। मगर मैं यह कह रहा हूं कि क्या यह एकमात्र कारण है कि आप चिंतित हैं कि गंदा पानी किसी और के पेट में या खेत में जा रहा है, यह अनुचित है, चाहे यह अनुचितता हरिहर पोलीफायबर्स से जुड़ी हो या कर्नाटक प्रदूषण नियंत्रण मंडल से।

शुभ्रा

यह इसलिए भी गैर-टिकाऊ है कि नदी मर जाएगी।

शशिधर

मगर एक ज़्यादा भौतिक अर्थ में, किसी इतने जटिल तंत्र के साथ छेड़छाड़ भी गैर-टिकाऊपन का एहसास दे सकती है। ठीक उसी तरह जैसे जंगल और उसका जटिल तंत्र कई-कई चीज़ों पर असर डाल सकता है। इससे आपको गैर-टिकाऊपन का एक एहसास मिलता है।

शरद

हम नदी के साथ छेड़छाड़ तो हमेशा से करते आए हैं। किसान नदी में एक पंप सेट लगाकर पानी निकालकर नदी के साथ भारी छेड़छाड़ करता है। किसान अपना स्वयं का बांध बनाकर पानी को ऊपर से ही मोड़ लेता है और आपको इसके बारे में पता तक नहीं चलता। खेती अपने-आप में तंत्र के साथ छेड़छाड़ है। उत्तरांचल में जो सारी टेरेस खेती आप देखते हैं, वह 800 सालों से रही है।

हरिहर पोलीफायबर्स अपस्ट्रीम है और यदि, मान लीजिए, उनके पास अपने प्रदूषकों को डालने के लिए कोई नदी नहीं है, तो प्रदूषक उनके कारखाने में ही बने रहेंगे और एक गंदा तालाब बन जाएगा। इस बात की संभावना तो बहुत कम है कि वे ऐसा करेंगे। वे कर यह रहे हैं कि प्रदूषकों को अपने तंत्र से बाहर कर रहे हैं। तो यह अनुचित है कि वे ऐसी चीज़ों का उत्सर्जन करें जिनके कारण किसी और को कष्ट हों।

वेणु

पारंपरिक अर्थशास्त्र में इस सवाल का जवाब उचित-अनुचित के मुद्दे को उठाए बगैर ही दिया जाता है - यदि लागत का भुगतान कर दिया गया है को उचित-अनुचित का सवाल ही नहीं है।

सुब्रमण्यन

कुल मिलाकर आप लागत-लाभ का खेल खेल रहे हैं, और अनुचित उसे कहेंगे जब लागत कोई और चुकाए। इसे आप अनुचित कह रहे हैं। तो आपका लागत-लाभ का खेल इस बात पर आधारित है कि सीमाएं कहां खींचते हैं। मैं सीमाओं को बदलता जा सकता हूं और आपको दिखा सकता हूं यह कुछ लोगों को अलग ढंग से प्रभावित कर रहा है या लाभ पहुंचा रहा है और ऐसा तर्क विकसित कर सकता हूं कि आप पहले से बेहतर स्थिति में हैं।

शरद

नहीं, नहीं। आप यह कहकर भी यह खेल खेल सकते हैं कि हरिहर द्वारा कागज़ उत्पादन का नेट मूल्य समुदाय पर आने वाली प्रदूषण लागत से ज़्यादा है। यह अर्थशास्त्रियों का लागत-लाभ खेल है। आप सड़क चलते आदमी से पूछिए और वह आपको बता देगा कि यह अनुचित है। हमें इन पर्यावरणीय मुद्दों पर एक जनमत संग्रह करना चाहिए और लोगों से पूछना चाहिए कि क्या प्रदूषण उचित-अनुचित की समस्या है या अक्षमता की।

सुब्रमण्यन

मैं अक्षमता की बात नहीं कर रहा हूं। जब आप कहते हैं कि लागत की गणना की जा रही है, तो मुद्दा यह है कि लागत कौन चुका रहा है। अनुचितता यहीं आती है।

शरद

एकदम सही। यही मैं भी कह रहा हूं। किसी आम व्यक्ति से पूछिए कि हरिहर पोलीफायबर्स द्वारा नदी में प्रदूषक उड़ेलने को लेकर नैतिक समस्या क्या है। सामान्यतः वे कहते हैं कि यह उचित नहीं है क्योंकि वह अपस्ट्रीम स्थित एक बड़ी कंपनी है और डाउनस्ट्रीम में कोई गरीब किसान है। मगर रोचक बात यह है कि यदि आप स्थिति को पलट दें और बात करें कि अपस्ट्रीम पर बड़े किसान अपने इकॉलॉजिकल तंत्र में कीटनाशक डाल रहे हैं और डाउनस्ट्रीम में कोई कीटनाशक प्रदूषित पानी पी रहा है, तब भी हम कहेंगे कि यह अनुचित है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कीटनाशक खराब हैं, मगर किसी को मेरे इलाके में अनुचित ढंग से इन्हें नहीं डालना नहीं चाहिए। मेरा कहना यह है कि टिकाऊपन का विचार हमें बहुत दूर तक नहीं ले जाता क्योंकि यह सब हम सदियों से करते आ रहे हैं। हम सदियों से जंगलों को खेतों में बदलते रहे हैं और खनन भी सदियों से कर रहे हैं। डाउनस्ट्रीम में कोई व्यक्ति प्रदूषित पानी पीकर मर गया हो, तब एक धुंधले से दूरस्थ भविष्य में होने वाले परिणामों की चिंता करना और इसे टिकाऊपन की शब्दावली में ढालना, इसमें कुछ दिक्कत है, क्योंकि इसमें वह चीज़ नहीं झलकती जो वास्तव में आपको सीधे-सीधे परेशान कर रही है। जो चीज़ आपको, कम से कम मुझे, परेशान कर रही है वह है कि कच्छ के रन में किसी को कथित रूप से पानी उपलब्ध कराने के लिए नर्मदा घाटी में रहने वाले विस्थापन की कीमत चुकाए, यह अनुचित है। तो नर्मदा का मुद्दा एक मायने में उचित-अनुचित का मुद्दा था। यह एक गहरे सामाजिक अर्थ में समता का सवाल था। फिर भी इसमें पर्यावरणीय कड़ियां हैं क्योंकि हम एक भौतिक परिवर्तन कर रहे हैं जिसके कारण पर्यावरणीय विस्थापन होता है। आप नियमगिरी में खनन कर सकते हैं और नियमगिरी के पड़ोस में किसी की ज़िन्दगी तबाह कर देंगे, और इसमें एक भौतिक कड़ी है जिसके ज़रिए यह हो रहा है। यह सीधे-सीधे भूमि से बेदखली का मामला नहीं है।

एन. रामकुमार, विप्रो फेलोशिप

मैं इसे एक प्रत्यक्ष उदाहरण से जोड़ना चाहूंगा, जैसे बैंगलोर में नाली का पानी केन्गेरी की ओर जाता है और कोई

नहीं जानता कि अंततः यह कहां पहुंचता है। मगर एक व्यक्ति के तौर मुझे लगता है कि मैं निगम को टैक्स चुकाता हूं ताकि वे इस मामले को संभालें, कम से कम मेरे लिए, जैसे मेरे घर से इसे साफ किया जाए और मेरी समस्या खत्म। एक व्यक्ति को लगता है कि प्रक्रिया इसी तरह चलती है, और यह कोई नहीं सोचता कि यह कहीं और एक बड़ी समस्या को जन्म दे रही है।

शरद

यह एक और कारण है कि क्यों समस्या को परिभाषित करते हुए हमें सतर्क रहना चाहिए क्योंकि पर्यावरण विज्ञान के ज़रिए हम जानते हैं कि प्रदूषण की निश्चित मात्रा को नदी संभाल सकती है। पर्यावरण का हर उपयोग उसे क्षति नहीं पहुंचाता, क्योंकि अन्यथा हम सांस भी न ले पाते। नदी में एक हद तक जैविक ऑक्सीजन मांग और रासायनिक ऑक्सीजन मांग वास्तव में निभने योग्य है।

मगर जब लोग टिकाऊपन के इन विचारों को उछालते हैं तो यकीनन आपको सावधान रहना होगा। जैसे जब कोई यह कहे कि वैश्विक स्तर पर प्रति व्यक्ति तीन टन उत्सर्जन निभ सकता है यानी टिकाऊ है, तो आपको इसे थोड़ा खोलकर देखना होगा। इसका मतलब क्या है? वास्तव में इसका मतलब है कि यदि आप यह मान लें कि 2 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान का कोई घातक परिणाम नहीं होगा, तब आप कह सकते हैं कि घातक परिणामों से बचने के लिहाज़ से 3 टन प्रति व्यक्ति उत्सर्जन टिकाऊ या निभने योग्य है। टिकाऊपन को सामाजिक ढंग से परिभाषित करना और पिर यह कहना कि यदि हम इसे स्वीकार करें, तभी यह निभने योग्य स्तर है, तो यह समस्यामूलक है। मगर पर्यावरण को कई स्तरों तक उपयोग किया जा सकता है। यदि ऐसा न होता तो जीविका का न्यूनतम आदिवासी स्तर भी टिकाऊ नहीं होगा। झूम खेती (shifting cultivation) एक तरह से पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ ही है। तो इस अर्थ में, यदि हम हर कार्य को बरबादीजनक मानेंगे तो समस्यामूलक होगा।

पर्यावरणवाद का भारतीय परिप्रेक्ष्य

मैं यहां इस बात पर ज़ोर देने की कोशिश कर रहा हूं कि पर्यावरणवाद एकाधिक नैतिक सरोकारों से प्रेरित है। कोई इकलौता सरोकार नहीं है। इसका मतलब है कि पर्यावरणवादियों के विभिन्न समूह इन सरोकारों के अलग-अलग रंगों को प्राथमिकता देते हैं। तो जब हमने कहा, मसलन, संरक्षणवादियों को दुर्लभ प्रजातियों की चिंता है, तो यहां कौन-सा सरोकर है? यह उचित-अनुचित का मामला नहीं है, कम से कम सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य से तो नहीं है। उन्होंने उचितपन के विचार को विस्तार दिया है और उसमें सारे जीवों को शामिल कर लिया है। मानवेतर जीवों को मारना अनुचित है क्योंकि उन्हें भी जीने का अधिकार है, तो आप इसे भी इस अर्थ में अनुचित कह सकते हैं। या आप कह सकते हैं कि वास्तव में यह उसी अर्थ में अनुचित नहीं है जिस अर्थ में आप अन्य इन्सानों के संदर्भ में अनुचित की बात करते हैं; यह प्रजातियों के सौंदर्य-मूल्य का मामला है, और जब हम आदिवासियों के सांस्कृतिक मूल्यों की बात करते हैं, तो शायद इसी अर्थ में करते हैं। आप अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल कर सकते हैं - सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सौंदर्य-सम्बंधी - ये सब एक ही व्यापक धारणा के हिस्से हैं कि भौतिक से परे भी किसी चीज़ का मूल्य हो सकता है। ऐसी कोई इकलौती नैतिक मान्यता नहीं है, जिससे सारे पर्यावरणवादी प्रेरणा लेते हैं, हां, कभी-कभी कुछ सरोकारों में तालमेल होता है। नियमगिरी के मामले में तेंदुए सम्बंधी सौंदर्य बोध और कंपनी द्वारा हथियाए जाने सम्बंधी सामाजिक न्याय बोध एक साथ आ सकते हैं।

संक्षेप में, भारतीय पर्यावरणवादी आंदोलन का एक प्रमुख योगदान यह रेखांकित करना रहा है कि पर्यावरण सम्बंधी समस्याओं में न्याय व समता के कई मुद्दे शामिल होते हैं, ठीक उसी तरह जैसे बाघ का सौंदर्य मूल्य या बैंगलोर में मेरे लिए साफ हवा की ज़रूरत, चाहे मैं कार में घूमता हूं। ज़ाहिर है इन मुद्दों का सम्बंध जीवन की गुणवत्ता से नहीं है, जबकि पश्चिम में पर्यावरण सम्बंधी संघर्षों का सरोकार जीवन की गुणवत्ता से रहा है। जैसे लॉस एंजेल्स में वायु प्रदूषण कम करना या लंदन में धुंध को हटाना या ओज़ोन छेद के बारे में चिंता जो शायद चमड़ी के कैंसर

में वृद्धि कर सकता है। ओज़ोन छेद एक समस्या इसलिए है क्योंकि ऊपरी अक्षांशों, जैसे 40 डिग्री और उससे ऊपर के अक्षांशों पर रहने वाले लोग और हल्के रंग की त्वचा वाले लोग त्वचा कैंसर के प्रति ज़्यादा संवेदी हैं। हमारे लिए यह बहुत बड़ा मुद्दा नहीं है क्योंकि हमारी चमड़ी का रंग गहरा है जो ओज़ोन छेद से रिसने वाली काफी सारी कॉस्मिक किरणों को संभाल सकता है। तो पश्चिम में जिस ढंग से पर्यावरणवाद का विकास हुआ था, वह जीवन की गुणवत्ता पर केंद्रित था। जीवन की गुणवत्ता को या तो निर्जन वन्य-क्षेत्रों (wilderness) के रूप में परिभाषित किया गया था या प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य पर होने वाले तात्कालिक असर (दमा, कैंसर) वगैरह के रूप में। भारतीय पर्यावरण आंदोलन का योगदान यह रहा है कि उसने यह स्पष्ट किया कि पर्यावरण में न्याय व समता के गंभीर मुद्दे भी शामिल हैं; पर्यावरण में कोई बदलाव, खास तौर से भारत व कटिबंधीय क्षेत्रों के घने बसे अन्य कई हिस्सों में, कभी भी एक अलग-थलग बदलाव नहीं होता।

इसके अलावा, संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पश्चिमी समाजों में उन्होंने पहले तो पर्यावरण को 'बेवकूफ' देशज अमरीकियों से मुक्त किया, उसके बाद वे जीविकाओं पर असर डाले बगैर टेनेसी बांध या हूवर बांध बनाकर उस पर्यावरण में बदलाव लाने को स्वतंत्र थे क्योंकि वहां वे इन स्थानों से लोगों को हटाने में पहले ही कामयाब हो चुके थे। मगर भारतीय संदर्भ में यदि आप कोई बांध बनाते हैं, तो निश्चित रूप से आप उस घाटी में रहने वाले लोगों की संपत्ति और जीवन को तबाह करेंगे। तो, पर्यावरण आंदोलन का वास्तविक योगदान पर्यावरण के किसी भी बदलाव में न्याय की मांग करना और समता के लिए संघर्ष करना था। उस बांध से लाभ किसे मिलेगा? और इसमें से कुछ तो खालिस न्याय के मामले हो सकते हैं। दरअसल, यदि नर्मदा घाटी के लोग नर्मदा बांध के मालिक होते, तो वे संभवतः बांध बनाने को सहमत होते। इस स्थिति से इन्कार नहीं किया जा सकता। तो एक स्तर पर संभव है कि यह मात्र प्रजातंत्र का सवाल हो। सवाल यह नहीं है कि क्या नर्मदा घाटी के लोग कच्छ के लोगों से ज़्यादा पर्यावरण समर्थक हैं बल्कि यह है कि संसाधनों पर स्वामित्व किसका है और उस संसाधन सम्बंधी निर्णय लेने का अधिकार किसका है।

टिकाऊपन का सवाल भी है क्योंकि कई मामले हैं जहां स्थितियां अनुचित रही हैं, जैसे जब भाखरा नंगल के नाम पर किसानों को सिंचाई उपलब्ध कराई गई। समय के साथ आपको समझ में आता है कि जो टेक्नॉलॉजी आपको दी गई थी या आपने बगैर सोचे-समझे अपना ली थी, वह भूमि के लवणीकरण और उत्पादकता व जीविका में गिरावट का सबब बन रही है। ऐसे मामलों में टिकाऊपन का सवाल ज़रूर है। जैसे पंप के विकास में, पिछले 20-30 वर्षों में बोरवेल टेक्नॉलॉजी की वजह से भूजल का ज़बर्दस्त दोहन किया गया है। एक ओर तो, किसान बेवकूफ नहीं कि वे यह न समझते हों कि वे बोरवेल से जिस पानी का खनन कर रहे हैं, वह किसी समय चुक जाएगा। मगर साथ ही, वे उसी रफ्तार से पानी निकालते रहते हैं। तो, सवाल यह है कि क्यों किसान पानी को पंप करके बरबाद करते चले जाते हैं जबकि यह उनके विनाश का कारण बन सकता है? तो टिकाऊपन को लेकर गंभीर सवाल हैं। ज़रूरी नहीं कि ये सवाल 100 साल बाद जलवायु परिवर्तन की संभावना जैसे रहस्यमय सवाल हों, हालांकि यह सच है कि आज कारों से जो कार्बन डाईऑक्साइड हम छोड़ते जा रहे हैं, वह 2050 में नहीं, तो 2100 में जलवायु परिवर्तन में योगदान देगी। मगर शायद यह भी सच है कि कहीं ज़्यादा बड़ी पर्यावरणीय समस्या यह है कि मेरी कार से सल्फर ऑक्साइड्स और नाइट्रोजन ऑक्साइड्स वगैरह के रूप में जो प्रदूषण फैलता है, वह उस इलाके में किसी के दमा को और गंभीर बना देगा जहां से मेरी कार गुज़रती है।

कहने का मतलब है कि टिकाऊपन एक गहरा मुद्दा या शायद संकट है। कई सारी चीज़ें जो हम कर रहे हैं, वे शायद ज़्यादा समय तक नहीं चल सकतीं। मगर कई सारी चीज़ें जो हम करते हैं, वे किसी और की जीविका को नष्ट करके की जाती हैं। पर्यावरणवाद के लिए समर्थन जुटाने के लिए हम भावी पीढ़ियों की, मेरे बच्चों या नाते-पोतों का सहारा नहीं ले सकते, क्योंकि इसका एक नाकारात्मक पक्ष यह है कि तब हमें हर चीज़ को टिकाऊ-गैरटिकाऊ के लिहाज़ से परिभाषित करना पड़ेगा। मगर फिर भी हम भावी पीढ़ियों को घसीटते हैं क्योंकि इससे

उनके दिल के तार यह सुनकर झंकृत हो जाते हैं कि उनके नाती-पोतियों का भविष्य दांव पर लगा है। इस तरह से देखें तो यह बहुत कारगर mother and apple pie नुमा तरीका है। मगर इसका भी एक दूसरा पहलू है। इससे आशय निकलता है कि सारी समस्याओं का सम्बंध भविष्य में पैदा होने वाले खतरे से है। मगर कई सारी समस्याएं हैं जो किसी के वर्तमान को खतरे में डालती हैं, और अक्सर इनकी लीपा-पोती कर दी जाती है। पूरा ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि 100 साल बाद दुनिया धराशायी होने वाली है, न कि इस बात पर कि लोगों के जीवन आज तबाह हो रहे हैं।

मगर एक अन्य स्तर पर, भारतीय पर्यावरण आंदोलन में जो चीज़ अब तक सामने नहीं आई है, वह है तीसरा आयाम, जो जीवन की गुणवत्ता का मुद्दा है, क्योंकि इस आयाम को हमेशा सम्पन्न, सुपोषित, रामचंद्र गुहा के शब्दों में पश्चिम के 'भरे पेट वाले पर्यावरणवाद' से जोड़कर देखा गया है - कि जब आपके पास भरपेट गैर-टिकाऊ गेहूं या चावल उत्पाद हों, तो आप नम भूमियों और ज़ोखिमग्रस्त पक्षियों के बारे में चिल्लपों कर सकते हैं। मगर यदि किसी तरह से आपका भोजन दांव पर लगा हो, तो आप ऐसा नहीं करेंगे। सवाल यह है कि क्या आप इन्हें इतना अलग-अलग कर सकते हैं। इससे यह बात रेखांकित होती है कि इसमें सम्बंधों का मुद्दा शामिल है। हम अपने आसपास के पर्यावरण से कैसे जुड़ते हैं, यह भी एक गहरा व बुनियादी मुद्दा है। आप इसे महज़ भौतिक लागत-लाभ विश्लेषण में समेटकर यह नहीं कह सकते कि एक बाघ एक कार से ज़्यादा लाभदायक है।

तो पर्यावरणवाद का एक आयाम है जिसका सम्बंध जीवन की गुणवत्ता से है - इसका सम्बंध बुनियादी जीवन से हो सकता है, जो वास्तव में विकास की अवधारणाओं से एक कड़ी है। और यदि आप इसे आज देखें, तो किसी भी किस्म के विकास की नैतिक बुनियाद क्या है जिन पर विकासवादी आंदोलन टिका हुआ है। ऐसे कुछ आंदोलन समता को अपना केंद्रीय मुद्दा बनाते हैं - चाहे वह मानव अधिकार आंदोलन हो या आदिवासियों के अधिकार का आंदोलन हो या किसान आंदोलन हो। ऐतिहासिक रूप से टिकाऊपन को लेकर कोई सवाल नहीं था। केंद्र बिंदु समता था - मसलन, यदि दलित अधिकार कार्यकर्ता सामाजिक अधिकारों और समता की बात करता है, तो जिस ढंग से मैंने हरिहर पोलीफायबर्स की समस्या को परिभाषित किया था, आपका सरोकार उससे थोड़ा ही अलग होगा। सामाजिक न्याय से जुड़े व्यक्ति को यह अनुचित लगेगा कि हरिहर अपस्ट्रीम में प्रदूषण करे, और डाउनस्ट्रीम किसान को अपने खेतों की सिंचाई के लिए प्रदूषित पानी मिले। मगर यदि आप स्थिति को पलट दें तो बात थोड़ी ज़्यादा पेचीदा हो जाएगी। यानी किसान अपस्ट्रीम में पानी में कीटनाशक प्रदूषण कर रहा है और डाउनस्ट्रीम में कोई कंपनी, मान लीजिए कोका कोला उत्पादन के लिए, पानी ले रही है, और सुनीता नारायण से फटकार सुन रही है कि वह कीटनाशक प्रदूषित कोका कोला बनाती है। क्या यह कंपनी के लिहाज़ से अनुचित होगा कि उसे, मान लीजिए गन्ना या कपास पैदा करने वाले किसानों द्वारा, अपस्ट्रीम में प्रदूषित पानी मिल रहा है?

रोहित

किसान को जल संसाधन पर एक तरह का कुदरती हक है क्योंकि वह पीढ़ियों से वहां रह रहा है। कंपनियों, खास तौर से कोका कोला को ऐसा कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह एक बहुराष्ट्रीय कंपनी है।

शरद

ठीक है, मगर मैं यह कह रहा हूं कि क्या पानी का उपयोग करने के अधिकार में उसे कीटनाशकों से प्रदूषित करना भी शामिल है? कीटनाशक तो मात्र 30 साल पहले आए हैं।

रोहित

यह किसी अन्य कारण से अनुचित हो सकता है मगर इसलिए नहीं कि कंपनी प्रदूषित पानी लेती है। जैसे ही आप कंपनी को बीच में लाते हैं, स्थिति बदल जाती है, मगर हो सकता है मैं गलत हूं।

शरद

मगर नैतिक मुद्दा तो वही है, नहीं? अपस्ट्रीम स्थित व्यक्ति प्रदूषित पानी को डाउनस्ट्रीम में बहा रहा है।

रोहित

नहीं, यदि आप कंपनी को छोड़ दें, और कहें कि नदी के पानी को प्रदूषित करना अपने आप में एक समस्या है, तो एक नैतिक मुद्दा बनता है। मगर कंपनी प्रदूषित पानी लेती है या अप्रदूषित पानी लेती है, यह कई अन्य बातों पर निर्भर है। कारण यह है कि हो सकता है कंपनी ने लायसेंस खरीदा हो और पानी उठाने के लिए बहुत कम भुगतान किया हो क्योंकि पानी पहले से ही संदूषित है, और उन्होंने इसकी सफाई के लिए अपनी व्यवस्था की हो। इस तरह से कंपनी इसकी बहुत कीमत चुकाएगी। तो कंपनी बीच में होने से मुद्दे उलझ जाते हैं।

टिप्पणी (श्रोता)

आपका कहना सही है। कानूनी ढांचे में किसान के प्रति एक किस्म का रवैया है और कोका कोला कंपनी के लिए दूसरे किस्म का। बस। अंततः यह एक नैतिक मुद्दा है।

रोहित

नहीं, दरअसल आप मेरी नैतिकता की गलत व्याख्या कर रहे हैं। मैं दो मुद्दे रखता हूं। पहला, कि क्या किसी किस्म का पारंपरिक अधिकार शामिल है? और दूसरा, कि क्या किसी तरह की वस्तुओं के खरीदार ने पहले यह बात ध्यान में रखी है कि वह क्या खरीद रहा है और किस गुणवत्ता की वस्तु खरीद रहा है? जब तक कंपनी के बारे में ये दो बातें साफ नहीं हो जातीं, तब तक कंपनी को इसमें घसीटना एक समस्या है।

शरद

मैंने अभी हाल ही में यह सोचना शुरू किया है कि मान लीजिए हम स्थिति को थोड़ा बदल दें, और कहें कि अपस्ट्रीम एक गरीब किसान है जो कीटनाशक इस्तेमाल करता है और डाउनस्ट्रीम एक समृद्ध उपभोक्ता है - कंपनी या कोई और। यहां सामाजिक न्याय का मसला पर्यावरणीय न्याय के मसले से अलग होने लगता है। खालिस पर्यावरणीय दृष्टिकोण से आप ऊपर बैठे हैं और मैं नीचे हूं, आप प्रदूषण बहाते हैं, यह मेरे प्रति अन्याय है, चाहे आप गरीब हों और मैं रईस, या मैं गरीब हूं और आप रईस। आप हमारे बीच के सम्बंध, अपस्ट्रीम-डाउनस्ट्रीम सम्बंध, का अनुचित उपयोग कर रहे हैं। ऐसा चिमनियों के मामले में हो सकता है या आपके घर के बाहर सूखी पत्तियां जलाने वालों के मामले में हो सकता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली में जाड़े के दिनों में गरीब लोग खुद को ठंड से बचाने के लिए सड़कों पर चीज़ें जलाते हैं, मगर अमीर लोग कह सकते हैं कि इससे प्रदूषण होता है। सवाल है कि आप इसे सामाजिक रूप से कैसे संबोधित करेंगे, क्या आप किसान पर उतने ही सख्त मापदंड लागू करेंगे जैसे कंपनी पर करते हैं या क्या आप किसानों के क्रियाकलापों पर उसी तरह प्रतिबंध लगाएंगे जैसे हरिहर पोलीफायबर्स पर लगाते हैं? इसी तरह की दलील जलवायु परिवर्तन के बारे में भी दी जाती है। यदि कोई रईस व्यक्ति फ्रिज या कार्बन डाईऑक्साइड उगलने वाली कार का उपयोग करता है, तो उतनी ही कार्बन डाईऑक्साइड एक गरीब व्यक्ति गैर-टिकाऊ ढंग से प्राप्त की गई जलाऊ लकड़ी का चूल्हा जलाकर उत्पन्न करता है। क्या आप दोनों को बराबर दोष देंगे? पर्यावरण के नज़रिए से कार्बन डाईऑक्साइड तो कार्बन डाईऑक्साइड है। मगर सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य से आपको देखना होगा कि व्यक्ति कौन है, उसकी सामाजिक स्थिति क्या है, उसके बाद ही आप दायित्व, तथा बदलने की ज़िम्मेदारी वगैरह के बारे में फैसला कर पाएंगे।

मगर मुद्दा यह है कि पर्यावरण समस्याओं में, ढेर सारे परस्पर गुंथे हुए नैतिक मुद्दों में, क्या हमें भावी पीढ़ियों का जीवन खतरे में डालने का हक है? अनुचितपन का सवाल भी है - क्या हमें यह अधिकार है कि संसाधनों की अपनी खपत या प्रदूषणकारी क्रियाकलापों के चलते लोगों के वर्तमान जीवन को प्रभावित करें या संकट में डालें? और

जीवन की गुणवत्ता का सवाल? वह क्या चीज़ है जिसे हम टिकाऊ बनाना चाहते हैं? टिकाऊपन सम्बंधी काफी सारे साहित्य में इस बात को लेकर काफी भ्रम है कि बाघ को क्यों बचाया जाए। या तो यह कहा जाता है कि बाघ को बचाया जाए क्योंकि हम उसके साथ एक नैतिक या सौंदर्य बोध सम्बंधी, या धार्मिक या आध्यात्मिक मूल्य जोड़ते हैं या यह कहा जाता है कि बाघ को न बचाया गया तो जीवन गैर-टिकाऊ हो जाएगा। कुछ लोग ज़रूर यह कहते हैं कि बाघ को इसलिए बचाना चाहिए कि बाघ को बचाते हुए आप जंगलों को बचा लेंगे, जंगलों को बचाते हुए आप नदियों को सूखने से बचा लेंगे और नदी को बचाते हुए आप पानी को बचाएंगे जो आपके जीवन के लिए अनिवार्य है। इस तरह के अभिमत बाघ को बचाने के लिए वास्तव में तर्क की कलाबाज़ियां हैं। ठीक है, आप बाघ को बचाना चाहते हैं क्योंकि वह सुंदर है, फरदार है, और मैं यह बात ताना देने के रूप में नहीं कह रहा हूं। मेरे ख्याल में किसी के लिए यह कहना एकदम सही है कि बाघ को इस धरती पर जीने का अधिकार है। सवाल है कि मैं यहां से आगे कैसे बढ़ूं? मैं शुरू करता हूं 'बाघ बचाओ' से और फिर मैं कहता हूं कि नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान से आदिवासियों को खदेड़ो क्योंकि वे बाघ के अस्तित्व के लिए खतरा हैं। यहां आकर यह सामाजिक न्याय का मुद्दा बन जाता है और ज़्यादा पेचीदा हो जाता है।

टिप्पणी (श्रोता)

मैं बस इतना कहना चाहता हूं कि पर्यावरण संप्रेषक के रूप में काम करते हुए, मुद्दे तो जटिल हैं, मगर संदेश काफी सरल होना चाहिए। इस चुनौती का सामना हममें से कई लोगों ने किया है।

शरद

ठीक बात है।

टिप्पणी (श्रोता)

नदी को प्रदूषित करने के तात्कालिक प्रभाव के बारे में सोचें। जब आप कहते हैं प्रदूषण तो इसका मतलब है कि नदी जितना संभाल सकती है, आप उससे ज़्यादा डाल रहे हैं। क्या मात्र इतने में ही एक बुनियादी मुद्दा नहीं है, बगैर यह जाने कि कौन प्रभावित हो रहा है?

शरद

एक तरह से नहीं, क्योंकि मेरे विचार में पर्यावरण एक सामाजिक अवधारणा है। और तो और, ह्रास भी एक सामाजिक अवधारणा है। यह कहने का कोई कारण नहीं है कि बाघ को बचाओ। ऐसा नहीं है कि बाघ न रहा तो दुनिया खत्म हो जाएगी। मतलब, हो सकता है आज से 1000 साल बाद कोई उल्का पृथ्वी से टकराने के कारण बाघ समाप्त हो जाएं, और सारे बड़े स्तनधारी भी खत्म हो जाएं जैसे डायनासौर का सफाया हो गया था। यानी भूगर्भ विज्ञान की दृष्टि से विलुप्तिकरण तो जीवन का हिस्सा है। पृथ्वी पर जीवन अलंघ्य नहीं है। तो इस स्तर पर आप वह तर्क नहीं दे सकते, जब तक कि आप इसके किसी पहलू पर नैतिक नज़रिया न अपनाएं। उचित-अनुचित, गैर-टिकाऊपन, या मेरा सौंदर्यबोध का, या कोई सांस्कृतिक मूल्य, महज एक तर्क या अभिमत है। आपको एक मूल्य जोड़ना पड़ेगा और वह आदर्शमूलक बात है। यह निहायत व्यक्तिनिष्ठ, नैतिक मत है। हमारे पास कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है कि क्यों।

बहु-परिप्रेक्ष्यों का निचोड़

कई सारे अन्य सवाल हैं - व्यक्तिगत बदलाव का क्या योगदान होगा, या क्या यह समस्या को सुलझाने हेतु पर्याप्त होगा? आप देख ही सकते हैं कि यह इस बात से जुड़ता है कि आप समस्या, जैसे प्रदूषण को किस ढंग से परिभाषित करते हैं, और उसके अंतर्गत क्या सोचते हैं कि समाधान क्या है। उदाहरण के लिए कोई कहेगा कि यह उचित-अनुचित की समस्या है, उस अर्थ में जैसे हरिहर पोलीफायबर्स द्वारा नदी में प्रदूषण घोलना अनुचित

है। इसमें लोगों की प्रतिक्रिया शायद यह हो कि 'हरिहर पर कार्रवाई करो - उनके कामकाज पर रोक लगाओ या तभी करने दो जब वे साफ पानी नदी में छोड़ने लगें।' कुछ लोग कहेंगे कि यह उचित-अनुचित की समस्या है ही नहीं, यह तो लागत-लाभ विश्लेषण की समस्या है जो फिलहाल ऋणात्मक है, और हमें उतना ही प्रदूषण नियंत्रण करना चाहिए कि लागत-लाभ विश्लेषण धनात्मक हो जाए। तो आप जिस ढंग से समस्या को परिभाषित करते हैं, उससे तय होता है कि आप किस तरह के समाधान ढूंढेंगे। कुछ लोग कहेंगे कि हरिहर पर टैक्स लगाना समस्या से निपटने का कारगर तरीका होगा; मगर हो सकता है कि यह कारगर न हो क्योंकि इससे समस्या से छुटकारा तो तब तक नहीं मिलेगा जब तक कि आप प्रदूषक पदार्थ के साथ कुछ और न कर सकें। कोई और कह सकता है कि यह वास्तव में संसाधन तक अनुचित पहुंच का मुद्दा है - नियमगिरी के समान यह आदिवासी सशक्तिकरण की समस्या है। इसी तरह कोई कह सकता है कि समस्या एल्यूमिनियम की मांग के कारण उठ खड़ी हुई है, यह मांग पश्चिम की गैर-टिकाऊ जीवन शैली या बैंगलोर में इसकी मांग का परिणाम है। तो नियमगिरी के आदिवासियों को बचाने के लिए मुझे गांधीवादी होना पड़ेगा, जो एक स्तर पर वैध तर्क है कि यदि मैं पर्यावरण पर इस तरह की मांग आरोपित नहीं करना चाहता तो मुझे अपनी उपभोग शैली बदलनी होगी।

इसे ध्यान में रखते हुए, हम इसी तरह के तर्क कुछ हद तक विकास के दायरे में भी देख सकते हैं। वहां सवाल यह उठेगा कि गरीबी क्यों है? यदि आप यह सवाल पूछते हैं, तो आप यह पूछ सकते हैं कि गरीबी में गलत क्या है? इस आखरी सवाल को लेकर अलग-अलग लोग अलग-अलग अर्थ निकालते हैं। किसी के लिए यह स्पष्ट व निरपेक्ष धारणा है कि किसी को भी गरीबी की रेखा के नीचे नहीं जीना चाहिए, समाज में गैर-बराबरी तो हो सकती है, मगर यदि सारे लोग गरीबी रेखा से ऊपर हैं, तो कोई समस्या नहीं है और यह सर्वथा स्वीकार्य है। यह अत्यंत उदारवादी किस्म का मत है। मगर कोई, क्या कहें, लाल मत के तहत तर्क दे सकता है कि समानता होनी चाहिए, और सिर्फ गरीबी से छुटकारे के लिहाज़ से नहीं बल्कि समाज में वास्तविक समता के लिहाज़ से। यह कहीं ज़्यादा कठोर मत होगा। और फिर आप गरीबी के वैकासिक प्रत्युत्तर के रूप में जो समाधान सुझाएंगे वे भी आपके मत के अनुसार अलग-अलग होंगे। गरीबी के सवाल पर न्यूनतम मज़दूरी कानून की अपेक्षा भूमि सुधार कहीं अधिक सशक्त जवाब है। यह एक अलग किस्म का जवाब है। कई लोग तर्क देंगे कि वास्तव में ऐसा नहीं है कि कम्यूनिस्ट भूमि सुधार का समर्थन करते हैं मगर गुलाबी या हल्के गुलाबी समाजवादी सिर्फ न्यूनतम मज़दूरी का समर्थन करते हैं। ज़ाहिर है कि मत सदा इतने स्पष्ट और विभाजन इतने सख्त नहीं होते। स्थितियां ऐसी हो सकती है कि समानता के सशक्त आग्रह के बावजूद आपको पता चले कि किसी सामाजिक-राजनैतिक संदर्भ में न्यूनतम मज़दूरी कानून ही एकमात्र व्यावहारिक समाधान है - हो सकता है यही एकमात्र व्यावहारिक कदम हो जो आप उठा सकें। मगर निश्चित तौर पर कुछ सह-सम्बंध होते हैं, कि यदि गरीबी को लेकर या क्यों गरीबी एक बुरी चीज़ है, को लेकर आपके ज़ोरदार मत हैं तो आप भूमि सुधार जैसे सशक्त समाधान के लिए काम करेंगे।

इसी प्रकार से, हम देखते हैं कि पर्यावरण सम्बंधी विमर्श में, या किसी भी पर्यावरणीय-वैकासिक विमर्श में, हम इस सवाल का सामना करते हैं - पर्यावरण की दृष्टि से उपयुक्त और सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण विकास-मार्ग कैसे हासिल करें? या आज हमारे सामने ऐसा मार्ग क्यों नहीं है? क्यों हम इतनी सारी कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित कर रहे हैं? यह कैसे हुआ कि हरिहर पोलीफायबर्स डाउनस्ट्रीम किसानों पर इस तरह का प्रदूषण थोपकर भी बच निकलता है?

कई लोगों के सवाल मार्क्सवादी विश्लेषण से भी उभरते हैं - हरिहर पोलीफायबर्स की राजनैतिक ताकत के सवाल। अर्थशास्त्री, या शायद एक नव-क्लासिकी अर्थशास्त्री के नज़रिए से समस्या सिर्फ यह है कि नेट लागत-लाभ अनुपात फिलहाल ऋणात्मक है, और यदि हम इन लागतों को आंतरिक बना दें, तो प्रदूषण नियंत्रण इस स्तर तक बढ़ जाएगा कि वह कुछ मामलों में सामाजिक रूप से कार्यक्षम होगा। बाज़ार का भी एक तर्क हो सकता है। प्रबंधन के मुद्दों पर काफी सारे साहित्य में आजकल प्रदूषण नियंत्रण के लिए बाज़ार-आधारित उपकरणों की बातें हो रही

हैं। इस तरह का तर्क, थोड़ा विस्तार दें तो, व्यक्ति और राज्य के सम्बंधों, व्यक्ति और समाज के सम्बंधों, सामाजिक ढांचों से भी जुड़ा है और इस बात से भी जुड़ा है कि कोई ढांचा कैसे व्यक्ति की क्रिया को प्रभावित कर सकता है और करना चाहिए। अति-जनसंख्या और गरीबों का अज्ञान, ये दो बाधाएं हमें पार करनी होगी इसके पहले कि हम इस बात पर ज़्यादा परिष्कृत चर्चा शुरू कर पाएं कि ये समस्याएं होती क्यों हैं? यह सब इस बात से सम्बंधित है कि हम समस्या को परिभाषित कैसे करते हैं।

मेरे ख्याल में मैं यहां रुकूंगा और सवाल सुनूंगा।

वेणु

आपने कहा कि आप समस्या के दायरे को जटिल बनाना चाहते हैं। मगर समाधान का दायरा भी बहुत पेचीदा है क्योंकि हमारे पास यह सोचने के लिए भी जानकारी नहीं है कि समाधान क्या है, इस अर्थ में कि, मसलन, हमारे पास वे संस्थाएं नहीं हैं जिनके ज़रिए हम शिक्षा में प्रवेश कर सकें। हमें तो यह भी पता नहीं कि शिक्षा कैसे योगदान देती है। मगर सामाजिक-राजनैतिक पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य से, इस अत्यंत जटिल मुद्दे पर समाधानों के बारे में सुसंगत ढंग से सोचने की राह में क्या बाधाएं रही हैं?

शरद

बेशक, यह एक पेचीदा जवाब है। एक बात पर हम आसानी से सहमत हो सकते हैं कि किसी भी तरह के पर्यावरणवादियों का घोर अभाव है - चाहे वे इको-मार्क्सवादी हों, इको-नारीवादी हों, इको-दलित हों या इको-संस्थावादी हों। किसी भी तरह के पर्यावरणवादियों का अभाव है। तो हम इन बारीकियों पर क्यों झगड़ रहे हैं? सच्चाई यह है कि यदि आप उन लोगों की गिनती करें जो सिर्फ बाघों की परवाह करते हैं, या जो सिर्फ प्रदूषण की चिंता करते हैं या सिर्फ किसी अन्य चीज़ की चिंता करते हैं और इन्हें जोड़ दें, तो भी संख्या बहुत कम है। तो यदि वे एक-दूसरे के दुश्मन हैं, या एक-दूसरे को देखते तक नहीं, तो भी वे निहायत अल्पसंख्यक हैं। यह अपने आप में एक चुनौती है। इस संदर्भ में आप कह सकते हैं कि मूल्यों की समस्या है। पर्याप्त लोग ही नहीं हैं जो भविष्य के बारे में, पड़ोसी के बारे में या स्वयं अपने जीवन की गुणवत्ता, जिस अर्थ में हम जीवन की हरित गुणवत्ता को समझते हैं, के बारे में चिंता करते हों। यदि उन्होंने अपने जीवन की गुणवत्ता को डिब्बों में रहने के रूप में परिभाषित कर लिया है जहां टीवी उन्हें सारे मनोरंजन परोसेगा, तो आपको अपने आसपास प्रकृति की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि एनिमल प्लेनेट ने तो सारी सामग्री संजोकर रख ली है। यही बात मैं संरक्षणवादियों से पूछता हूं क्योंकि कुछ संरक्षणवादी जिनेटिक विविधता की धारणा से प्रेरित हैं। मैं कहता हूं कि यदि आप एक शीत बैंक में सारा जर्म प्लाज़्म संग्रहित कर लें, तो आप बाहर प्रकृति की सारी जिनेटिक विविधता को नष्ट कर सकते हैं। इस तर्क की कोई काट नहीं है।

एक अन्य स्तर पर, अकादमिक दुनिया में इतना विखंडन है कि हम सुसम्बद्ध ढंग से सोच ही नहीं पाते। हम आज भी इन समस्याओं के अपने-अपने साफ-सुथरे जवाबों में उलझे हुए हैं। हम बहुलतावादी ढंग से सोच नहीं सकते। हम एक-दूसरे से हाथ मिलाने और एक-दूसरे के मतों को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। एक मुद्दा, खास तौर से भारत में, यह रहा है कि संरक्षण आंदोलन विकास आंदोलन - ग्रामीण विकास व आदिवासी अधिकार सम्बंधी आंदोलनों के साथ टकराव की स्थिति में है। क्यों? क्योंकि हम यह देख पाने में असमर्थ हैं कि पर्यावरणीय न्याय और सामाजिक न्याय आपस में गुंथे हुए हैं और हम किसी एक अलग-थलग मुद्दे पर मत नहीं बना सकते। संयुक्त राज्य में निर्जन वन्य क्षेत्र लॉबी ने जो अति-इकॉलॉजिकल मत पकड़ा है, उसे लोगों के बारे में एक अंतर्निहित मत के बगैर नहीं अपनाया जा सकता। आप बाघ या मकड़ी के अधिकारों की बात तब तक नहीं कर सकते जब तक कि आप अन्य इन्सानों के अधिकारों के बारे में एक राय नहीं बनाते। यदि आप इस कदम को लांघकर, सिर्फ बाघ या अमेज़न की तितलियों के अधिकारों की बात करना चाहते हैं, और उसके लिए अमेज़न के इर्द-गिर्द बागड़ खड़ी

करना चाहते हैं और सशस्त्र गार्ड्स रखना चाहते हैं जिन्हें हर उस व्यक्ति को गोली मारने के आदेश हों, जो रबर निकालने के लिए वहां घुसने की कोशिश करे, तो यह एक समस्या है।

जैसा कि मैंने पहले कहा था, इसका सम्बंध काफी हद तक इस बात से है कि हम यह मानना नहीं चाहते कि जब हम पर्यावरणवादियों के नाते हस्तक्षेप करते हैं, तो हम एक सामाजिक रुख भी अख्तियार कर रहे होते हैं, और हमारे पास नैतिकता का एक ज़्यादा व्यापक एहसास होना चाहिए, सिर्फ किसी विशिष्ट चीज़ की नैतिकता का नहीं।

सुनीता राव, ATREE

हरिहर पोलीफायबर्स के सामाधान के बारे में, एसपीएस, धारवाड़ ने उनसे सीधी टक्कर ली और वह पूरा अभियान अब इतिहास में दर्ज है। यह बात जन सुनवाई का कानून बनने से बहुत पहले की है। उन्होंने इसके लिए संघर्ष करके किसी तरह की जन सुनवाई हासिल की थी। यह देखते हुए कि चीज़ें कितनी पेचीदा हैं, इसे एक समाधान तक पहुंचने की कोशिश के रूप में बताया जा सकता है।

शरद

बिलकुल। मैं कहना यह चाह रहा था कि समाज में बहुत सारे एसपीएस नहीं हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि एसपीएस जो कुछ कर रहा है, वह पूरी तरह सही है या गलत है, न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण है। यकीनन हमें सैकड़ों और एसपीएस चाहिए जो सैकड़ों और हरिहरों को संभाल सकें। हम सवाल यह पूछ रहे हैं कि उस पैमाने पर पर्यावरण आंदोलन क्यों नहीं है? क्या यह इसलिए है कि हमने अभी तक माना ही नहीं है कि कोई समस्या है, क्योंकि कई समस्याएं मुझे सीधे-सीधे प्रभावित नहीं करतीं, या समस्या की प्रकृति को लेकर हमारे मत अलग-थलगवादी हैं और हम अपने व्यक्तिगत जीवन के कामकाज और आम समस्याओं के बीच कड़ियां नहीं देखते। जब तक कुछ प्रजातियां कुछ निर्धारित इलाकों में सुरक्षित हैं, जिन्हें मैं सैलानी के रूप में देख सकूं, तो मुझे इस तरह के प्रबंधन से जुड़े बड़े मुद्दों को देखने की कोई चिंता नहीं है। एक तो हमारे जैसे बहुत सारे लोग नहीं है, ऊपर से इन मुद्दों पर पर्याप्त एकता भी नहीं है और समस्याओं के विश्लेषण को लेकर पर्याप्त संवाद तो यकीनन नहीं है। और इसीलिए, जैसा कि मैंने पहले ज़िक्र किया था, पर्यावरण अर्थशास्त्री भी कई अन्य पर्यावरण कार्यकर्ताओं के साथ टकराव की स्थिति में रहते हैं, क्योंकि आदर्शमूलक सोच के तहत वे इसे उचित-अनुचित के मुद्दे के रूप में नहीं देखते, और विश्लेषण के नज़रिए से वे मानते हैं कि बाज़ार की ताकत इतनी अद्‌भुत रही है कि सारी समस्याओं को इस रास्ते से सुलझाया जा सकता है।

सुब्रमण्यन

आपने कहा कि हम जैसे पर्याप्त लोग नहीं हैं। इन्हें पर्याप्त कैसे किया जाए?

अनवर

कहीं हम इतने सारे न हो जाएं कि वही एक समस्या बन जाए।

सुब्रमण्यन

मैं आपसे व्यापक जन जागरूकता के बारे में पूछ रहा हूं। हर जगह दस-दस लोगों से काम नहीं चलेगा, इससे कहीं अधिक होने चाहिए। आखिरकार पूंजीवादी ढांचा एक नेटवर्क पर टिका है। इन संस्थाओं के नेटवर्क आधारित ढांचे को देखते हुए सिर्फ नेटवर्क ही इनका प्रतिरोध कर सकते हैं। एक-एक संस्था द्वारा विरोध का पुराना तरीका यहां नहीं चलेगा। एक नेटवर्क को दूसरे नेटवर्क का विरोध करना होगा। इस मायने में, हमारे जैसे पर्याप्त लोगों को इन छोटे-छोटे टुकड़ों से एक नेटवर्क बनाने में लगना पड़ेगा। यह शिक्षा प्रक्रिया का हिस्सा भी है।

अनवर

सिर्फ नेटवर्क काफी नहीं हैं क्योंकि जब सोशलिस्ट फोरम जैसे नेटवर्क्स या वैकल्पिक समूहों को देखते हैं तो उनके

पास अन्य नेटवर्क्स के खिलाफ तर्कों व संसाधनों का वैसा खज़ाना नहीं होता जैसा अन्य नेटवर्क्स के पास होता है। ये संसाधन हमारे नेटवर्क्स पैदा नहीं कर सकते।

रोहित

मुझे लगता है कि जब तक पर्यावरणीय समस्याओं को समाज में उचित-अनुचित की समस्या के रूप में देखेंगे, तब तक ये मूलतः सामाजिक-राजनैतिक समस्याएं हैं जिनके खिलाफ वे लोग इकट्ठे होकर लड़ेंगे जिन्हें लगता है कि यह अनुचित है। इस मायने में यह 'मानव समस्या' नहीं बनती, जब तक कि आप पर्यावरण के मुद्दों में मानव जाति के टिकाऊपन की बात को नहीं लाते। अब तक ऐसा लगता है कि मानव जाति का टिकाऊपन और जिस ढंग के मानव जीवन पर हम विचार कर रहे हैं, उसका टिकाऊपन, उसे केंद्र में नहीं लाया गया है। इसे बहुत शिद्दत से परिभाषित नहीं किया गया है, मुझे यही समस्या लगती है।

पर्यावरण के प्रति संवेदीकरण में शिक्षा की भूमिका को लेकर टिप्पणियां

अंजलि

कई सारे मुद्दे और आपने जिस ढंग से समस्या का निचोड़ प्रस्तुत किया, वह भी शिक्षा में एक ज़्यादा मूलभूत परिवर्तन का संकेत देता है, इस अर्थ में कि वह ज़्यादा समग्रतापूर्ण होगा और एक अर्थ में नेटवर्क-परिप्रेक्ष्य में होगा। हमारे शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में होता यह है कि कोई एक सरोकार ध्यान खींच लेता है और उसे प्राथमिकता मिल जाती है। इसलिए सुप्रीम कोर्ट का वह फैसला आया कि आपको पर्यावरण अध्ययन पढ़ाना ही होगा। अधिकांश अन्य विषयों को स्पर्श नहीं किया गया है, वे अपने-अपने परिप्रेक्ष्य में सीमित हैं, विशेषीकरण की शैली में बंद हैं। मसलन, गणित सिर्फ गणित को देखेगा, अन्य चीज़ों को नहीं देखेगा। इसके मद्दे नज़र, पाठ्यचर्या के ढांचे पर कहीं अधिक बुनियादी पुनर्विचार करना होगा, इस पुनर्विचार में विषयों के स्थान और उनके परस्पर सम्बंधों वगैरह को भी देखना होगा। यह एक हिस्सा है। दूसरी बात यह है कि हमें इस बात का विश्लेषण करना चाहिए कि बच्चों का समाजीकरण 'दूसरे' को देखने के लिए कैसे होता है कि वह 'दूसरा' कौन है? आज डाउनस्ट्रीम का किसान 'दूसरा' है। ऐसा क्यों है कि मेरा पोती या पोती या परपोती डाउनस्ट्रीम के किसान से ज़्यादा महत्वपूर्ण है? मैं यह कहने की कोशिश कर रही हूं कि हम कैसे स्वयं को देखते हुए और यह देखते हुए बड़े होते हैं कि कौन 'हम' में शामिल है और कौन 'अन्य' में और हम कैसे और किन मुद्दों के प्रति चिंतित होते हैं। ये दो बहुत बुनियादी मुद्दे हैं जो शायद इकॉलॉजिकल टिकाऊपन से तत्काल सम्बंधित न लगें। मगर शिक्षा के संदर्भ में हमें यह देखना चाहिए कि टिकाऊपन की विश्व दृष्टि और इकॉलॉजी को कैसे जोड़ा जा सकता है।

शरद

शुक्रिया। आपने ये कड़ियां बहुत अच्छे से जोड़ दीं।

मीरा

मेरी दो टिप्पणियां हैं। मूलतः क्यों और क्यों इसका महत्व है के बीच। मुझे लगता है कि बुनियादी रूप से सवाल यह है कि अधिकांश लोगों का एक नज़रिया हो और फिर एक विश्व दृष्टि हो। मैं शिक्षा को लेकर कुछ मूलभूत बातें साझा कर सकती हूं। एक चीज़ तो यह है कि मैं पर्यावरण आंदोलन में एक कार्यकर्ता रही हूं, और हम नर्मदा विरोधी अभियान में शामिल थे, हम हसिरू-उसिरू वगैरह में भी हैं। मगर हर जगह वही लोग नज़र आते हैं। मन में मैं 15 नाम गिन सकती हूं - मैं उनके नाम गिना सकती हूं। बैंगलोर में ले-देकर 15 कार्यकर्ता हैं जो लाल बाग में खड़े हैं, चिकपेट में खड़े हैं, झीलों के लिए खड़े हैं, और अनुसंधान भी कर रहे हैं। यह पूरी खिचड़ी है, हम खुद को मोटले (खिचड़ी) ग्रुप कहते हैं।

कुल मिलाकर शिक्षा आपको अनुशासन सिखाती है मगर पर्यावरण के लिए खड़े होना, लोगों के अधिकारों के लिए खड़े होना, दलितों के लिए लड़ना, हमें विरोध करना बिलकुल नहीं सिखाया जाता। दरअसल, कक्षा में किसी भी किस्म के विरोध को चुप करा दिया जाता है। मैं बता सकती हूं कि मैंने विरोध करना कहां से सीखा। मुझे लगता था कि शिक्षक मुझे जो पंद्रह पन्नों का होमवर्क देते हैं वह गलत है। तो मेरे पिता ने खुद प्राचार्य को खत लिखने की बजाय मुझे सुझाया कि मैं खुद प्राचार्य से बात करूं। तो पूरी भीड़ के सामने कंपकपाती आवाज़ में मैंने अपनी बात कही कि यह गलत है कि आप हमें पंद्रह पन्नों का होमवर्क देते हैं। मुझे सज़ा तो ज़रूर मिली मगर होमवर्क घटकर पांच पन्नों का हो गया। यह एक सीबीएसई स्कूल था।

मैं जब मलेश्वरम सर्किल के पास खड़ी होकर पेड़ों के लिए लड़ रही थी, तो बुज़ुर्ग सज्जन ने आकर कहा, "तुम बहुत खराब लड़की हो। तुम यह हड़ताल कर रही हो और हमारे बच्चों को बहका रही हो। ये खराब बातें हैं। जाओ, चली जाओ। अपना वक्त बरबाद मत करो। कुछ काम का काम करो और कुछ पैसे कमाओ।" उन्होंने वास्तव में सड़क पर यह भाषण मुझे दिया। तो मुझे लगता है कि हम अपने बच्चों को यह सिखाते हैं कि भेड़ बने रहें। जैसा कि यहां किसी ने कहा था, यदि कोई हड़ताल नहीं करेगा, तो सब कुछ बुरा है। तो यदि मैं यहां इस विप्रो जमावड़े को संदेश दूं कि हमें एक विरोध के लिए खड़े होना है, तो मुझे इतने लोगों में शायद दो लोग मिल जाएंगे।

पूरा मामला विश्व दृष्टि का है। चूंकि बदकिस्मती से पर्यावरण आंदोलन न्याय को लेकर है, इसलिए अपने काम में आपको दस में से एक व्यक्ति मिलेगा। मेरा ख्याल है कि शिक्षा को ही सोचना होगा कि हम कैसे आज्ञापालक नागरिक बना रहे हैं बजाय ऐसे नागरिकों के जो जागरूक हों और अपने विचार कहने को तैयार हों।

शरद

एक मित्र जो मार्क्सवादी किस्म का कार्यकर्ता था और फिर इको-मार्क्सवादी कार्यकर्ता हो गया, उसने इस बात को बहुत अच्छे ढंग से कहा था। स्टैण्डर्ड मार्क्सवादी सिद्धांत में हम कहते हैं कि लोग लोगों का शोषण करते हैं। स्टैण्डर्ड संरक्षणवादी कहते हैं, लोग प्रकृति का शोषण करते हैं। मगर हकीकत यह है कि इन दो बातों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। प्रकृति का शोषण करते-करते लोग लोगों का शोषण करने लगते हैं - जैसा कि नियमगिरी के मामले में है। और लोग लोगों का शोषण करते-करते प्रकृति का शोषण करने लगते हैं। मगर हर चीज़ को एक ही तरह की समस्या में समेट देने से कोई मदद नहीं मिलती। बल्कि ऐसे एकाधिक नैतिक कारण हैं जिनकी वजह से हमें पर्यावरण को भी बचाना चाहिए और सामाजिक न्याय की भी चिंता करनी चाहिए और जिसे हम 'अच्छा जीवन' कहते हैं उसकी अंतर्वस्तु की भी।

एक चीज़ है जो न तो अकेले टिकाऊपन का नज़रिया और न अकेले सामाजिक न्याय का नज़रिया हमें बताता है - वह अंतर्वस्तु क्या है जिसे आप बचाना चाहते हैं? उस जीवन की वह क्या अंतर्वस्तु है जिसे आप या तो पीढ़ियों तक बनाए रखना चाहते हैं या आज दुनिया में सब लोगों तक फैलाना चाहते हैं? क्या वह नैनो कार वाली अंतर्वस्तु है या एमिनल प्लेनेट आधारित अंतर्वस्तु है? इस बात का जवाब न तो टिकाऊपन के नज़रिए से मिलता है, न ही सामाजिक न्याय के नज़रिए से। तो हमें तीनों परिप्रेक्ष्यों की ज़रूरत है। और मेरे ख्याल में यह वह विस्तार है जो समस्या को समझने के लिए हमारे पास होना चाहिए, इससे पहले कि हम 'बात को चारों ओर फैलाएं'। वह बात क्या है जिसे हम फैलाना चाहते हैं?

मैं सिर्फ यह कहकर अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा कि यदि आप पर्यावरण शिक्षा का वह पाठ्यक्रम देखना चाहते हैं, जिसका मसौदा तैयार किया जा रहा है, मुझे लगता है कि पर्यावरण शिक्षा को एक अतिरिक्त विषय के रूप में लागू करने का सुप्रीम कोर्ट का विचार मूलतः एक समस्या है। उदाहरण के लिए, खुद सुप्रीम कोर्ट की समझ है कि पर्यावरण शिक्षा का मतलब है पर्यावरण विज्ञान की शिक्षा, और यह पर्यावरण का अराजनैतिकरण कर देता है, क्योंकि कोई पर्यावरण वैज्ञानिक आपको यह बात कैसे बताएगा कि आपका जीवन और भविष्य खतरे में है।

आपको ऐसे पर्यावरण वैज्ञानिक इक्के-दुक्के ही मिलेंगे जो कहेंगे कि यदि आप डीज़ल वाहन में घूम-घूमकर अन्य लोगों के जीवन को प्रदूषित करते हैं, तो आप उनके प्रति अनुचित कार्य कर रहे हैं क्योंकि आपका डीज़ल वाहन बाहर कणदार पदार्थ छोड़ता है जबकि आप अंदर एसी में बैठे रहते हैं। वैज्ञानिक जगत में से कोई इस बात को व्यापक नैतिकतावादी ढांचे में प्रस्तुत नहीं करेगा। और जब हम शिक्षा के बारे में सोचते हैं, तो यह एक प्रमुख मुद्दा है।

हार्डी

दो चीज़ें जोड़ूंगा, जिनके बारे में शरद ने लिखा है मगर यहां बात नहीं की। एक तो यही है कि टिकाऊपन का तथ्य क्या है? किस चीज़ को टिकाऊ बनाना है। यह एक सवाल है जिसके बारे में हमें सोचना होगा। आप कहते हैं कि कोई संरक्षणवादी ज़िस भी चीज़ को हम बचाना चाहते हैं, उसकी विविधता को देखता है। मगर दुनिया में, हमारे समाज में कई चीज़ें हैं जिन्हें हम बचाना नहीं चाहते। तो जब हम टिकाऊपन की बात करते हैं, तो इस बात की कुछ समझ और विश्लेषण होना चाहिए कि कौन-सी चीज़ बचाने योग्य है। किस चीज़ को बचाया जाए और किसे न बचाया जाए, इसे लेकर गहरे नैतिक व सामाजिक मुद्दे होंगे। हर चीज़ को बचाने की ज़रूरत नहीं है।

दूसरी चीज़ जिसके बारे में भी आपने, एक तरह से, बात की थी - तंत्र की विशालता। आपकी परेशानी यह है कि हम बेबस महसूस करेंगे। तो क्या किया जाए? यह इसलिए भी है कि हम जिस तंत्र में जी रहे हैं, वह भी बहुत विशाल है, और हमें पता नहीं कि कहां से हस्तक्षेप करना शुरू करें ताकि कुछ फर्क पड़े। आप कह रहे हैं कि कोई भी तंत्र स्वयं को क्षति पहुंचाता है। किसी भी बड़े तंत्र में संकट और हलचल की भविष्यवाणी करना मुश्किल होता है, और ये काफी बड़ी क्षति कर सकते हैं। एक तरीका यह है कि खुले व छोटे तंत्र प्रजातांत्रिक हो जाएं। इसमें समतामूलक होने और सबकी बात के लिए गुंजाइश देने की ज़्यादा संभावना होगी। यह भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

और आखरी चीज़ जो मुझे बहुत महत्वपूर्ण लगती है, वह यह है कि यदि हमारे पास शिक्षा है, तो हम इस बारे में बात कर सकते हैं कि अच्छा जीवन क्या होता है, अन्य लोगों के सराकोर क्या हैं, और यह कि अच्छे जीवन का मतलब है और लोगों की चिंता करना। यदि यह संदेश परवाह और प्रेम का सम्मिश्रण है, तो यह पर्यावरण के मुद्दों की बात करने का कहीं बेहतर तरीका है बजाय वैश्विक तपन के।

सारांश

हम जानते हैं कि पर्यावरण का संकट है। मगर यदि हमें इसके बारे में सार्थक रूप से कुछ करना है, जिसमें शिक्षा का दायरा भी शामिल है, तो हमें 'पर्यावरणवाद' को बेहतर समझना होगा। हमारी समझ पश्चिम के भरपेट पर्यावरणवाद, जिसका फोकस वन्यजीवन के संरक्षण और जीवन की गुणवत्ता पर है, से आगे जानी चाहिए और उसमें पर्यावरणवाद की व्यापक धारणा का समावेश होना चाहिए जो संसाधनों और पर्यावरणीय प्रभावों के बंटवारे में समता और न्याय से प्रेरित हो और संसाधनों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने को महत्व देती हो। भारत के विभिन्न पर्यावरण आंदोलन और विवाद हमें यह व्यापक धारणा समझने में मदद करते हैं। तब हमारे पास पर्यावरण के मुद्दों के बारे में सोचने का एक ज़्यादा व्यवस्थित फ्रेमवर्क होगा जो पर्यावरण संकट के बहुआयामी प्रभावों के सामाजिक व तकनीकी कारणों को अलग-अलग करेगा।

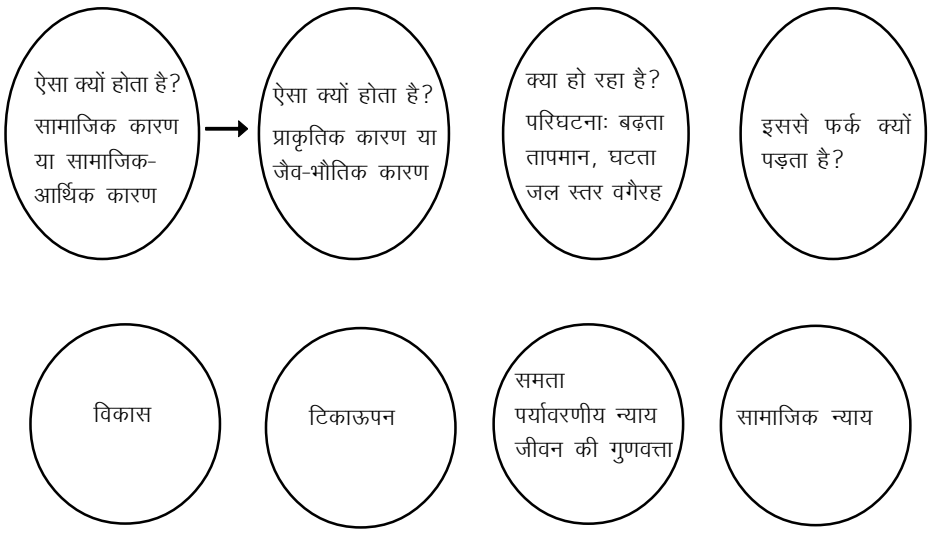

शरद लेले द्वारा बोर्ड पर बनाए गए रेखाचित्रों का लगभग प्रस्तुतीकरण - ये रेखाचित्र बोर्ड पर बनाए गए चित्र की हूबहू नकल नहीं हैं।